विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)–16/85

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २९२५ • कार्तिक पूर्णिमा [शक] • दि. २७–११–१९८५ • अंक ६

उद्बोधन

मेरे प्यारे साधक साधिकाओ!

आओ, सत्य-दर्शन करें!

उन परम सत्यदर्शी भगवान सम्यक् संबुद्ध का उपकार मानें जिन्होंने कि न केवल स्वयं सत्य का दर्शन किया, बल्कि हम सब के लिए भी मार्ग-निर्देशन किया. न केवल स्वयं अमृतपान किया, बल्कि हम सब के लिए भी अमृत का द्वार खोल दिया. लोकीय सत्योंका दर्शन करके ही लोकोत्तर परम सत्य का दर्शन हो सकता है. रोग का सही दर्शन करके ही रोग-मुक्ति का दर्शन हो सकता है.

कोई चिकित्सक रोग के अस्तित्व को स्वीकार न कर रोगी को रोग-विहीन होने का भुलावा देता है तो उसकी हानि ही करता है. कोई चिकित्सक रोग की अतिरंजना करके रोगी को भयभीत करता है तो उसकी हानि करता है. परन्तु एक उत्तम अनुभवी चिकित्सक रोग की यथाभूत जानकारी प्राप्त कर उसके कारणों की खोज करता है और उनका निराकरण कर रोगी को रोगमुक्त कर देता है. जब कोई व्यक्ति अनेक जन्मों की तप-साधना द्वारा पूर्णता प्राप्त करता है और सम्यक् संबुद्ध बनता है तो वह यथार्थदर्शी एक महान वैद्य की भांति ही जन-उपकारी होता है. वह 'भिषक' वह 'भैषज्य-गुरु' वह 'महान वैद्य' किसी थोथी कल्पना में उलझता-उलझाता नहीं. वह तो 'यथाभूत ज्ञान-दर्शन' द्वारा परम सत्य का साक्षात्कार करता-कराता हुआ पीड़ित लोगों को पीड़ामुक्ति का कल्याणकारी मार्ग ही देता है.

जहां सत्य-दर्शन का गुण जागे, वहां मिथ्या भ्रांतियों से स्वतः छुटकारा मिल जाता है. सत्य स्थिति को स्वीकारते हैं तो आसानी से जान लेते हैं कि यह दुःख है. साथ-साथ यह भी जान लेते हैं कि यह क्यों हो रहा है. फिर यह भी जान लेते हैं कि इस दुख से छुटकारा पाया जा सकता है और साथ-साथ यह भी जान लेते हैं कि इस छुटकारा पाने योग्य से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है. बस, ये चारों बातें जान ली तो मतलब की सारी बातें जान ली. यदि दुख जानकर दुखमुक्त हो गये तो जो करणीय था, वह सब कुछ कर लिया, कृत-कृत्य हो गए. जो प्राप्तव्य था वह प्राप्त कर लिया. कृतार्थ हो गए.

धम्म वाणी

जातिपि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खो, मरणम्पि दुक्खं, सोक परिदेव दुक्ख दौमनस्सुपायासा पि दुक्खा, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं, संखित्तेन पञ्चुपादान खन्धा दुक्खा।

जन्म भी दुख है, बुढ़ापा भी दुख है, रोग भी दुख है, मरण भी दुख है, शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य, उपायास भी दुख है, अप्रिय का संयोग दुख है, प्रिय का वियोग दुख है, मनचाहा न पाना भी दुख है; संक्षेप में कहें तो उपादान याने आसक्ति पर अाधारित पंच-स्कंधों की यह जीवनधारा ही दुख है.

साधकों! नमस्कार योग्य है वह सम्यक् संबुद्ध, जिसने मतलब की ही बात की, फिजूल कल्पनाओं में नहीं उलझे. आओ, हम भी उन्हीं की भांति फिजूल कल्पनाओं को छोड़कर, फिजूल विग्रह-विवादों को छोड़कर, दुखविमुक्ति का यथार्थ लाभ हासिल करें. मंगल इसी में है! कल्याण इसी में है! भला इसी में है!

मंगल मित्र,

स. ना. गो.

भगवती विद्या विपश्यना

— श्री यशपाल जैन

किसी नगर के लोग बड़े दुःखी थे। कोई धन की बहुलता के कारण हैरान था तो कोई धन की कमी के कारण, किसी के बहुत से बच्चे थे, तो किसी के घर में एक भी बच्चा नहीं था। कहने का तात्पर्य यह कि किसी को कोई दुःख था तो किसी को कोई।

एक दिन उस नगर में आकाशवाणी हुई कि नगर के उत्तरी छोर पर सुख की ढेरी लगी है। लोग अपने अपने दुख की गठरी ले जाएँ और वहाँ पटक कर सुख ले आएँ।

इस आकाशवाणी के सुनते ही सारा गाव अपना अपना दुःख गठरी में बांधकर ले गया और वहाँ पटक कर सुख ले आया.

रास्ते में एक साधु बैठा खिलखिलाकर हंस रहा था. लोगों ने उसके पास जाकर कहा, "महाराज, आपने आकाशवाणी नहीं सुनी ? अगर आपको कोई दुःख हो तो उसे पटक कर सुख ले आइए."

साधु ने उनकी बात सुनी, पर अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ. वहीं बैठा हंसता रहा.

नगर में सुख आ गया. सब बड़े खुश थे. एक दिन एक आदमी के घर में खाने को कुछ नहीं था, पर उसके पड़ोसी सेठ के यहां तिजोरियाँ भरी पड़ी थीं. उस आदमी ने सोचा कि यह कहां का न्याय है ?

उसका यह सोचना था कि दुःख फिर से लौट आया. किंतु लोगों ने देखा वह साधु उसी तरह खिलखिलाकर हंस रहा है. उन्होंने उसके पास जाकर पूछा, "महाराज, यह क्या बात है कि जब शहर में दुःख था, आप हंस रहे थे; जब सुख आया तब भी आप हंस रहे थे और अब जब कि दुःख फिर से लौट आया है, आप वैसे ही हंस रहे हैं ?"

साधु ने कहा, "तुम लोग अज्ञानी हो. सुख बाहर खोजते हो. सुख बाहर की नहीं, भीतर की चीज है."

साधु की बात सही थी. हममें से अधिकांश व्यक्ति सुख-शांति के लिए पदार्थ पर निर्भर करते हैं. यह भूल जाते हैं कि पदार्थ नश्वर है और जो नाशवान है, वह कभी स्थायी सुख नहीं दे सकता.

दुनिया मन का खेल है

कहा जाता है कि सारी दुनिया मन का खेल है. मन शरीर में बसता है. यदि हम अपने शरीर को और उसकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं को जान लें तो दुःख और अशांति से मुक्त होने का मार्ग हमें सहज ही मिल जायेगा. शरीर को जानने की सबसे उत्तम और वैज्ञानिक पद्धति विपश्यना है. उसका अर्थ है शरीरको देखना और उस प्रक्रिया के द्वारा जो सत्य है उसका यथाभूत साक्षात्कार करना। इस साक्षात्कार से जीवन का रहस्य मिल जाता है.

विपश्यना का अर्थ है साक्षीभाव से, द्रष्टाभाव से देखना. श्वास के माध्यम से शरीर के अंग-प्रत्यंग का इस प्रकार अवलोकन करना कि जो सुखद अनुभूतियाँ हों, उनके प्रति राग उत्पन्न न हो, जो दुखद अनुभूतियाँ हों उनके प्रति द्वेष उत्पन्न न हो. राग और द्वेष के साथ सुख और दुःख का घनिष्ट संबंध है. विपश्यना राग और द्वेष से व्यक्ति को ऊपर उठाने का बड़ा ही कारगर रास्ता है.

बुद्ध व महावीर ने अपनाया

विपश्यना की पद्धति हजारों वर्ष पूर्व हमारे देश में प्रचलित हुई थी. बीच में वह लुप्त हो गई. आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध और भगवान महावीर ने उसे पुनर्जीवित किया. उन्होंने स्वयं अपने भीतर खोज की और पता लगाया कि मानव के अंतरमें बड़ा कीमती खजाना भरा पड़ा है. ज्ञान-चक्षु खुलने की देर है कि वह खजाना प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है. अनंत शांति की कुंजी हाथ लग जाती है. अंधकार दूर हो जाता है. अंतर-बाह्य सब जगमगाने लगता है.

चार-पाँच सौ वर्ष तक यह विद्या जन-कल्याण स्थापित करती रही और फिर विलुप्त हो गई. किंतु उसमें ऐसी शक्ति निहित है कि वह सदा के लिए समाप्त नहीं होती। बार बार जाग उठती है.

ऋग्वेद के एक ऋषि ने कहा है :

"यो विश्वाभि विपश्यति भुवना,
सं च पश्यति, स नः पूषाविता भवद्।"

अर्थात, जो विश्व के अभिमुख होकर वर्तमान में जो हो रहा है, उसे सम्यक् रूप से देखता है, वह धर्म में पुष्ट हो जाता है, पूज्य हो जाता है.

यहां विश्व से तात्पर्य है व्यष्टि से आरंभ होकर समष्टि तक का विस्तार. वर्तमान का अर्थ है जो क्षण सामने है, सम्यक् रूपसे अभिप्रेत है, सूक्ष्म दृष्टि से, तटस्थ भाव से. इस प्रकार विपश्यना का मूल प्रयोजन है अपने को देखना, अपने को जानना. जो अपने को जान लेता है, उसके लिए जानने और जीतने के लिए कुछ भी नहीं रहता.

मनुष्य जो कुछ क्रिया करता है, उसकी प्रतिक्रिया अनिवार्य है। हमें क्रोध आता है तो हमारी श्वांस तेज हो जाती है, नाड़ी की गति और हृदय की धड़कन बढ़ जाती है. यदि हम शरीर को जान लें तो नाड़ी की रफ्तार, हृदय की धड़कन और श्वास की गति तीव्र होते ही समझ जायेंगे कि हमें क्रोध आ रहा है और उसे जीतने के लिए तैयार हो जायेंगे. चोर तभी घर में आता है, जब कि लोग असावधान रहते हैं. जागते लोगों के घर में चोर प्रवेश नहीं कर सकता. यही बात हमारे साथ है. हम जागरूक हैं तो क्रोध अथवा अन्य विकार हमारे पास फटक नहीं सकते. विपश्यना चौकीदार का काम करती है. हमारे सिर पर घंटी बांध देती है. यह घंटी कहती रहती है... सावधान रहो ! यह हमें अंतर की क्रियाओं को देखने, जानने, पहचानने, मूल्यांकन करने और राग-द्वेष द्वारा बंधनों में जकड़ जाने से मुक्त करती है. अपने भीतर की सचाई का शोध करने और अपनी विकृतियों तथा दुःखों से विमुक्त होने की क्षमता प्रदान करती है.

इस विद्या के टूटे सूत्र को वर्तमान युग में जोड़ने का लोकोपयोगी कार्य किया ब्रह्मदेश ने. वहां के सयाजी ऊ बा खिन नामक एक महानुभाव ने उसे अपने देश में ही नहीं, अन्य देशों में भी फैलाया. उन्हीं की प्रेरणा से श्री सत्य नारायण गोयन्का विगत पन्द्रह वर्ष से इस महान कार्य को कर रहे हैं. सत्य नारायण जी के पूर्वज बर्मा गए थे. वहीं सत्यनारायणजी का जन्म हुआ, शिक्षा हुई, व्यापार किया. वहीं सयाजी ऊ बा खिन से उन्हें यह कल्याणी साधना मिली, जिसका अभ्यास वह अनवरत करते रहे. सन् १९६९ में ऊ बा खिन के निर्देश पर सत्य नारायणजी ने आचार्य का पद सम्भाला और जनवरी, १९७१ में सयाजी के निधन के पश्चात् अपने को इसी अमृतमयी विद्या

के प्रसार के लिए समर्पित कर दिया. वह दस दिन का शिविर लगाते हैं. प्रारम्भिक तीन दिन आना-पान (श्वास को आते जाते देखने) पर केन्द्रित करते हैं, शेष सात दिन विपश्यना अर्थात मन के द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग की सूक्ष्म और स्थूल संवेदनाओं को द्रष्टाभाव से देखने पर. इसका अभ्यास हो जाने पर अन्तर के सारे मैल स्वतः ही गलने और कटने लगते हैं. सारी ग्रंथियाँ खुलने लगती हैं. आनंद का सागर लहराने लगता है.

स्मरण रहे कि इस विद्या का किसी भी संप्रदाय से सम्बंध नहीं है। यह तो विशुद्ध मानव कल्याण की वैज्ञानिक पद्धति है।

(सान्ध्य टाईम्स, २१ दिसम्बर, १९८४ से साभार)

प्रेरक-प्रसंग

(६-अ)

भगवान के जीवनकाल की एक और घटना.

कपिलवस्तु का एक शाक्य राजकुमार उत्तिय. भगवान का उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुआ. कामवासना के संस्कारों को जड़से उखाड़ना चाहता था. समझ गया था कि विपश्यना ही इसका एक मात्र सहज वैज्ञानिक साधन है. अतः अभ्यास में लग गया.

एक दिन भिक्षाटन के लिए जब गांव गया तो किसी एक कोकिलकंठी नारी की स्वरमाधुरी सुनकर मोहमुग्ध हो गया. कामातुरी नारी के गीत में काम-भोग का आह्वान था. बोल भिक्षु के अन्तर में पैठ गए और उसका मन-मंथन करने लगे. साधक कामवासना के ज्वर से संतापित हो उठा, जर्जरित हो उठा. स्मृति-विभ्रम की अवस्था से अभिभूत हो उठा. गीत के वह बोल ही मानस पर बार बार उभरने लगे. ऐसे समय भगवान की अमृतवाणी के शब्द याद आए...

"सद्दं सुत्वा सतिमुट्ठा पियनिमित्तं मनसीकरोतो" आदि आदि. याने शब्द सुनकर स्मृति भ्रष्ट हो जाती है, शब्द का आलंबन ही प्रिय लगने लगता है और मानस उसी रसमें रंजित होकर डूबने लगता है. भव-संसार के प्रवाह की ओर बहानेवाले ऐसे आस्रवों का, काम संस्कारों का संवर्धन होने लगता है.

उसे तुरंत होश आ गया. कामशब्दों में रागरक्त हो डूबने का यह प्रसंग उसके लिए बहुमूल्य प्रेरणा का कारण बना, मुक्ति का कारण बना. उसमें अपरिमित उत्साह जागा और वह 'सतिमुट्ठा' को 'सतिपट्ठान' में बदलते हुए वासना की न केवल तत्कालीन बाढ़ के बाहर निकला, बल्कि सही तरीके से संवेदनाओं के आधार पर विपश्यना करता हुआ भव संस्कार के संवर्धन से छुटकारा पाकर चिरसंचित वासना की उदीर्णा और क्षय में लग गया। समय पाकर भिक्षु उत्तिय सर्वथा विकार-विमुक्त हुआ और अर्हंतों में से एक हुआ.

क्रमशः...

(स. ना. गो.)

साधकोंके उद्गार

हैदराबादके वकील एच. जी. कुलकर्णी इगतपुरीमें ६ वां शिविर पूरा करके लौटने पर लिखते हैं, "बाह्य जगतमें समता स्थापित करके हर क्षणकी सच्चाईमें जागरूकताके साथ जीवन समर्पण करते हुए जीनेका संकल्प है. इस धर्म कामनाके साथ अगले कदम उठा रहा हूँ. हैदराबाद छोड़कर गांवके खेतमें झोपड़ी डालकर आगेके बचे हुए क्षणको धर्म-संवर्धन हेतु लगानेका जीवन-लक्ष्य है. इस विषयमें आपसे चर्चा करनेका अवसर नहीं मिला. धर्म सहायक होगा. विपश्यनाके क्षेत्रमें आनेके बाद जीवनमें जो सुधार हुए हैं वह अवर्णनीय हैं. पुराने संस्कार क्षीण हो रहे हैं, यह इसी जीवनमें देख रहा हूँ. नियमित साधना चालू है. हर क्षण अंदरकी जागरूकता का लक्ष्य प्राप्त हो रहा है, यह इस शिविरसे बहुत स्पष्ट हुआ. सिवाय कृतार्थता एवं समर्पण के और कोई गुरु-दक्षिणा नहीं दे सकता. सबका मंगल हो!

एक अन्य पत्रमें लिखते हैं :-

धर्म मार्गका क्रम प्रतिक्षण जाग्रत अवस्थाकी ओर लिए जा रहा है. धम्मपदका एक सूत्र,

नतं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं परिसेवति॥

ऐसे कर्म नहीं करने चाहिए जो करनेसे पश्चाताप होता हो और जिनका परिणाम रोते, आंसू बहाते हुए जीवन व्यतीत करनेका हो.

इसी दृष्टिकोणको लक्ष्य रखते हुए धर्मपूर्ण आजीविका अपना रहा हूँ ताकि धर्मका जीवन प्रतिक्षण जी सकूँ और आपके आशिर्वादसे प्रतिक्षण प्रगति करते रहूँ. प्रतिदिन सुबह ४ बजेसे उठकर ६ बजे तक बैठक व मंगल मैत्री हुआ करती है. कितने वर्ष धर्मका जीवन जीना है, यह तो निश्चित नहीं परन्तु अपने हाथका वर्तमान क्षण जागरूकता व होशमें जीनेका लक्ष्य ही धर्म है। वह हर क्षण सार्थक हो, यही दृढ़ भावना है. आशिर्वाद दें.

❁ ❁ ❁

जोधपुरसे श्री कन्हैयालाल लोढ़ा लिखते है, "मेरी ध्यान साधना प्रातः सायं एक-एक घंटे बराबर चल रही है। "सब्बकाय पटिसंवेदी अस्ससिस्सामी ति सिक्खति" (सारे शरीरमें संवेदनाओंको देखते हुए ही सांस लेता है।)

"सब्बकाय पटिसंवेदी पस्ससिस्सामी ति सिक्खति" (सारे शरीरमें संवेदनाओंको देखते हुए ही सांस छोड़ता है)

– साधनाएँ जीवनका अंग बनती जा रही है। दिनमें जब कभी भी विश्रामका समय मिलता है तभी "विनेय्य लोके अभिज्झा दोमनस्सं" (संसारमें राग-द्वेष रहित) ये दोनों साधनाएँ स्वतः होने लगती हैं. कामनाओंके शांत होते ही चित्त शांत होता है. फिर श्वास की स्थिरताके सहारे अंतरप्रवेश हो जाता है तथा अनायास सहज ही सारे शरीरमें चिन्मयता (सजगता), जड़तारहित अवस्था का बोध होता है. ऐसा लगता है कि यही जीवन है, सच्चा सुख है. इस अवस्थासे च्युत होना सचमुच जड़तायुक्त जीवन बिताना है, दुःखी जीवन बिताना है, जीवन व्यर्थ खोना है.

आपने शुद्ध धर्म के रूपमें वीतरागताका स्वाधीनता (मुक्तिका) ध्रुवचारी बननेका, चिन्मयताका, आभ्यंतरिक, अक्षय, अव्याबाध प्रसन्नताका, आरोग्य-निरामयताका, स्वस्थताका यह मार्ग बताया; इसके लिये मैं अत्यंत आभारी हूँ.

प्राकृतिक विधान अर्थात "यथाभूत-तथागत" के रूपमें यह मार्ग सदा शुद्ध ही रहे, किसी व्यक्ति, नाम, संप्रदाय, दर्शन, मत, मान्यता, वाद आदि से जुड़कर दूषित-विकृत न हो जाय, संकीर्ण-सीमित न हो जाय, शुद्ध स्वरूपमें लोगोंका कल्याण करता रहे... यही शुभ भावना है.

भविष्यमें वैज्ञानिक विकास के साथ भोगोंकी विपुल सामग्री उपलब्ध होनेवाली है जो भोगेच्छाको बढ़ानेवाली है. भोगेच्छाकी वृद्धिके साथ लाभ, लोभ, संग्रह, मान, मद, स्वार्थपरता, संकीर्णता हृदय-हीनता, क्रूठोरता, अकर्मण्यता, अकर्तव्य आदि दोषोंकी भयंकर वृद्धि होनेवाली है; जिसके फलस्वरूप अभाव, तनाव, दबाव, हीनभाव, नीरसता, दीनता, निर्बलता, असमर्थता, प्राणशक्तिका ह्रास, संघर्ष, द्वन्द, शारीरिक और मानसिक रोग आदि दुःखोंकी भयंकर अभिवृद्धि होनेवाली है जिससे मानव का जीना दूभर हो जायेगा. मानव जातिके अस्तित्वको ही खतरा हो जायेगा. इन दोषोंसे, दुःखोंसे, नर्क, स्वर्ग, परलोक आदिसे निरपेक्ष धर्म ही बचा सकता है. अतः मानव जातिको विनाश से बचानेके लिए शुद्ध धर्म की अत्यंत आवश्यकता है. आप यह महान कार्य कर रहे हैं जिसके प्रति मानव जाति आपकी चिर ऋणी रहेगी व विश्वके इतिहास में स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायेगा. सबका मंगल हो!"

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित

दोहे धर्म के

सोये जननी जठर में, जाने कितनी बार।
जरा, व्याधि का, मरण का, लिए दुखों का भार ॥१॥
दुक्ख जनम है, दुख जरा, दुक्ख मरण, दुख रोग।
प्रिय वियोग का दुख बहुत, दुख अप्रिय संयोग ॥२॥
जग में होता ही रहे, अप्रिय से संयोग।
कौन भला जिसका कभी, प्रिय से हो न वियोग? ॥३॥
रोग, बुढ़ापे ने किया, यौवन मद का ह्रास।
जीवन-मद टूटा, बना मृत्युराज का ग्रास ॥४॥
हाय पुत्र! हा संपदा! हाय मान! सम्मान।
हाय! हाय! करते हुए, निकले तन से प्राण ॥५॥
अनवाही होती रहे, यही जगत की रीत।
चित विचलित करती रहे, मनचाही की प्रीत ॥६॥

दूहा धरम रा

जद जद जग मँह जनमियो, पड्यो काल कै गाल।
जरा व्याधि कै दुक्ख सूं, रह्यो हाल बेहाल ॥१॥
दुक्ख जनम को, मरण को, जरा-व्याधि दुख होय।
ईं दुखमय संसार मँह, सुखियो दिखै न कोय ॥२॥
किसो बुढ़ापो आवियो, ल्यायो गहरो सोग।
दुरबलता असमरथता, साथै ल्यायो रोग ॥३॥
व्याधि बड़ी अणखामणी, कोई व्याधी होय।
तन की, मन की व्याधि सूं जग मँह बच्यो न कोय ॥४॥
इन्द्रिय सुख को सीस पर चढ्यो रह्यो उण्माद।
अनजाणै भेळा कर्या, कितना दुक्ख विसाद ॥५॥
इंद्रिय सुख मीठो जहर, पीवत लाग्यो स्वाद।
गट-गट-गट-गट पी गयो, पाछै बाढी व्याध ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/-

विपश्यना" 11/85
पो. र. नं. Ns (M) 16/85

Licence No. NS 18
Licensed to post Without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)

To